International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 17-08-2025, Accepted: 16-09-2025, Published: 30-09-2025
Volume 11, Issue 5, 2025, Page No. 107-110

भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में संस्कृति की उपादेयता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

आदित्य देव त्यागी
शोध छात्र, तिलक पत्रकारिता एवं जन संचार स्कूल, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय पत्रकारिता में सनातनी पत्रकारिता के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान अर्जित करने वाले भानुप्रताप शुक्ल ने अपने लेखन से भारतीय जनमानस को लंबे समय तक जागृत किया है। शुक्ल के आलेख सनातन भारतीय संस्कृति के साक्षात दस्तावेज रूप में पाठकों के मानसपटल पर गहरी छाप छोड़ते हैं। उनका सांस्कृतिक संचेतना का भाव जागरण उनको समकालीन पत्रकारों में अग्रणी बनाता है। उनके दृष्टिपथ में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक जो भी विषय आया, वही संपादकीय प्रणयन की भावभूमि बन गया। एक मौलिक, सर्वकालिक तथा सार्वभौमिक विचारक के रूप में उनके चिंतन के मूल में विश्व, राष्ट्र, समाज, परिवार, व्यक्ति से लेकर मानवीय विकास की सनातन परंपरा निहित है। वे 'स्व' तथा 'स्वदेशी' में ही भारतीयों के आत्मोत्थान का मार्ग देखते हैं। वेद से लेकर स्वामी विवेकानंद तक की वाणी में सुने और समझे तर्कों तथा तत्वों की सहज और सुखद अनुभूति उनके लेखन में दृष्टिगोचर होती है।
'राष्ट्र धर्म', 'पाञ्चजन्य', 'तरुण भारत', 'राष्ट्रीय सहारा', 'पंजाब केसरी', 'स्वदेश' समेत 'दैनिक जागरण' जैसे समाचार पत्र को अपनी लेखनी से अभिषिक्त करने वाले भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता के सांस्कृतिक चिंतन पक्ष पर पर्याप्त विचार विमर्श तो होता रहा है किंतु अकादमिक जगत में इस महत्तवपूर्ण पक्ष पर शोध की स्थिति स्नेहशून्य रही है। शुक्ल की पत्रकारिता में संकृति संचेतना को सविस्तार समझने के लिए उनके आलेखों, पुस्तकों, वक्तव्यों का अध्ययन अपेक्षित है। शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध में इसी बिंदु को ध्येय रखते हुए समग्र अध्ययन का प्रयास किया है। शोध अध्ययन का मुख्य प्रश्न वर्तमान पीढ़ी के पत्रकारों, संपादकों तथा स्तंभ लेखकों के लिए भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में संस्कृति की उपदेयता है। उनका सांकृतिक चिंतन आज भी राजनेताओं तथा समाज सुधारकों समेत समाज जीवन से जुड़े हर व्यक्ति के लिए पाथेय बना हुआ है। शोध अध्ययन का निष्कर्ष स्थापित करता है कि एक प्रखर सामाजिक और सांस्कृतिक चिंतक, विचारक तथा पत्रकार के रूप में शुक्ल सदैव अग्रणी बने रहेंगे। उनका स्पष्टवादी लेखन भारतीय संस्कृति की समृद्ध एवं गर्वोज्ज्वल परंपरा का साकार चित्रण है।

मूलशब्द: सांस्कृतिक संचेतना, भू सांस्कृतिक, दाय, वैचारिकी, आत्मोत्थान, संपादकीय प्रणयन।

प्रस्तावना
संस्कृति स्थिर नहीं होती, अनवरत गतिशीलता और समय के साथ अधुनातन परिवर्तनों को अंगीकार करते रहने से ही उसका मूल बना रहता है। इस मूल को पहचानकर, उसे आत्मसात कर आगे बढ़ना ही सच्ची सांस्कृतिक चेतना है। शुक्ल के विचार में संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन का उत्तरदायित्व केवल सरकार या संस्थाओं का नहीं है। इस राष्ट्रयज्ञ में हम सभी की सामूहिक आहुति अपेक्षित है। जब हम अपनी मातृभाषा में बात करते हैं, नई पीढ़ी को अपने त्योहारों का महत्व समझाते हैं या दादी–नानी उनको किस्से–कहानियां सुनाती हैं, तो हम संस्कृति की मशाल अगली पीढ़ी को सौंप रहे होते हैं।
हमारे देश में दादी–नानी जैसे संबंध ऐसे केंद्र बिन्दु के रूप में जाने जाते हैं जो राष्ट्र, संस्कृति समाज और परिवार की तमाम परंपराओं का अक्षय स्रोत रहे हैं। उन्होंने ही नई पीढ़ी को पालने, अतीत से जोड़ने, वर्तमान के निर्देशन तथा भविष्य की मजबूत बुनियाद रखने का दायित्व पर्याप्त कुशलता के साथ निभाया है। परिवार और 'वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा संपूर्ण भारतीय संस्कृति के जीवन प्रवाह और चेतना के साथ जुड़ी है। वर्तमान में हम अपनी महान और युगीन परंपराओं के मूल से कटते जा रहे हैं। फलस्वरूप संबंधों में परायापन बढ़ता जा रहा है और अपने देश, अपने समाज, अपनी संस्कृति, अपनी परंपरा और अपने दाय अर्थात विरासत से विरक्त होते जा रहे हैं। जीवन की संवेदनशीलता, करुणा, क्षमा, दया, सहयोग, समन्वय, समर्पण और सहवास सब कुछ सिमटता जा रहा है। अपनी संस्कृति और मानवीय जीवन मूल्यों से कटा जनमानस अपना नैसर्गिक स्वभाव त्याग कर उदारता के मोहपाश में जकड़ा जा रहा है। सामूहिक चेतना का स्थान व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति ने ले लिया है। पश्चिम की व्यक्तिवादी संस्कृति का अप्रत्याशित उभार हमारे सामूहिक सोच वाली संस्कृति को निगलने पर आमादा है।
देश के चित्त उसके जीवन मूल्यों का प्रश्न आते ही अनेक कोनों से यह आवाज उठनी शुरू हो जाती है कि यह मध्यमवर्गीय मानसिकता है। दुनिया तथा उसकी प्रगति की गति को देखते हुए भारतीय मानव जीवन में सांकृति और मानव मूल्यों की स्थापना का शाश्वत बने रहना सभी के लिए विपुल आश्चर्य का विषय बना हुआ है। पाश्चात्य संस्कृति से अभिप्रेरित वर्ग अनुभव करता है कि सुबह में स्थापित मूल्य यदि सायंकाल तक वैसे ही बने रहे तो प्रगति के पांव थम जाएंगे। भानुप्रताप शुक्ल इसी वैचारिकी को चित्रित करते हुए कहते हैं कि आधुनिक चिंतकों–विचारकों में यह अवधारणा घर कर गई है कि यदि गिरगिट की तरह मनुष्य ने अपनी मान्यताएं नहीं बदली तो वह अंधयुग और बैलगाड़ी संस्कृति वाला आदमी है। उनका ऐसा आत्मबोध ही अपने प्रति लज्जा बोध को जन्म दे रहा है। ऐसे परिवेश में हर मन टूटा हुआ, परिवार बिखरा हुआ, संबंध संकटग्रस्त तथा हर स्तर पर परायापन अनुभव किया जा सकता है। इस समय निराशा के गहन अंधकार से भारतीय सनातन संस्कृति ही सभी का पाथेय बन सकती है।

शोध उद्देश्य
प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :
1. भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में भारतीय संस्कृति की उपादेयता के विविध पक्षों का अध्ययन करना।
2. भानुप्रताप शुक्ल द्वारा लिखित आलेखों तथा संपादकीयों में वर्णित सांस्कृतिक उपादेयता का विश्लेषण करना।

3. सांस्कृतिक संचेतना जागरण में भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के निमित्त विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से सामग्री संकलन किया गया है। तथ्यों के संकलन के क्रम में पुस्तकालयों, विविध राष्ट्रीय समाचार पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा भानुप्रताप शुक्ल पर प्रकाशित हुए आलेखों एवं पुस्तकों से सहायता ली गई है। मुख्य रूप से तथ्यों का प्रमुख स्रोत 15 भागों में उपलब्ध भानुप्रताप शुक्ल समग्र है जो उनके द्वारा लिखित आलेखों, संस्मरणों एवं स्तंभ लेखों का संकलन है।

भानुप्रताप शुक्ल का परिचय

भानुप्रताप शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद बस्ती स्थित ग्राम राजपुर बैरिहवां में संवत 1992, शाके 1857, श्रावण शुक्ल अष्टमी तदनुसार 7 अगस्त, 1935 को हुआ था। वह अपने पिता पण्डित अभयनारायण शुक्ल की एकमात्र संतान थे। जन्म के मात्र 12 दिन बाद ही माँ के स्वर्गवास के चलते उनका लालन–पालन उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर में नाना जगदम्बा प्रसाद तिवारी के घर हुआ। वर्ष 1955 में बतौर प्रचारक उन्होंने अपना जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को समर्पित कर दिया। संपादकाचार्य पण्डित अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के सान्निध्य में पत्रकारिता की दीक्षा लेने वाले भानु जी एक प्रखर और प्रबुद्ध पत्रकार के रूप में स्थापित हुए। अपनी असाधारण प्रतिभा के चलते उन्होंने राष्ट्रधर्म (मासिक) और तत्पश्चात तरुण भारत (दैनिक) समाचार पत्र का संपादकीय उत्तरदायित्व निभाया। सांस्कृतिक चेतना एवं संस्कृतिमूलक विचार वाहक मासिक पत्र 'राष्ट्रधर्म' में उन्होंने सितम्बर 1973 से जून 1975 तक 'मनोगत' शीर्षक से लेखन किया। कालांतर में उन्होंने संघ मुखपत्र 'पाञ्चजन्य' का भी संपादन किया। वर्ष 1975 में आपातकाल थोपे जाने पर 'पाञ्चजन्य' को लखनऊ से दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया। भानु जी का केंद्र भी दिल्ली हो गया और अंतिम श्वास पर्यंत उनकी गतिविधियों का केन्द्र बना रहा।

भानु जी ने राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान, रामजन्मभूमि का सच, राष्ट्र जीवन की दिशा, सावरकर विचार दर्शन, स्वदेशी चेतना, कश्मीर, कीर्ति कलश, भाषा और जीवन मूल्य, यक्ष प्रश्न, अयोध्या, अड़तीस कहानियां, आँखिन देखी कानन सुनी, कल्पवृक्ष, संकेत रेखा, राष्ट्रीयता के बिसराव का आतंक उल्लेखनीय हैं। भानु जी 17 अगस्त, 2006 को इस नश्वर संसार से विदा हो गए।

समसामयिक संदर्भ में संस्कृति का मूल्यांकन

अपने मूल स्वरूप में संस्कृति किसी भी समाज की सजीवता और आत्मा होती है। यह केवल नृत्य, संगीत या पहनावे तक सीमित नहीं होती, बल्कि हमारी सोच, व्यवहार, मूल्यों और जीवनशैली का समुच्चय होती है। भारतीय संस्कृति में जहाँ एक ओर वेदों की गूंज है, तो दूसरी ओर लोककथाओं की मधुरता समाहित है। उसका यह मनहर स्वरूप ही उसको वैशिष्ट्य प्रदान कर उसे 'विविधता में एकता का प्रतीक' बनाता है। भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता भारतीय संस्कृति, परंपरा और मानवीय मूल्यों को समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए उनको विचार–विमर्श का विषय बनाती है। उसमें सनातन संस्कृति की गहरी समझ और सम्मान का आग्रह दृष्टिगोचर होता है। वे पत्रकारिता को केवल सूचना देने का माध्यम न मानकर उसे राष्ट्र–निर्माण और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक सशक्त उपक्रम मानते थे। अपने आलेखों में शुक्ल स्पष्ट करते हैं कि भारतीय समाज को यदि आत्मनिर्भर और जागरूक बनाना है, तो उसे उसके मूल अर्थात उसकी संस्कृति से जोड़े रखना आवश्यक है।

सनातन संस्कृति के विविध पक्षों को संपुष्ट करने के लिए वे अपने लेखन में वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता जैसे ग्रंथों की व्याख्या आधुनिक संदर्भों में करते चलते हैं। उनके विचार से सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण ही समाज की अस्थिरता का मुख्य कारण है। उन्होंने आधुनिक जीवनशैली के दुष्प्रभाव से हो रहे नैतिक पतन, पारिवारिक विघटन और सांस्कृतिक अवमूल्यन का मुखर प्रतिरोध किया। शुक्ल स्वामी विवेकानंद के कथन 'जिस समाज की शिक्षा उसकी संस्कृति से कट जाए, वह केवल डिग्रियां तो दे सकता है, लेकिन चरित्र नहीं गढ़ सकता' के प्रबल समर्थक रहे हैं। शुक्ल स्वतंत्रता के पश्चात भी मैकाले की शिक्षा पद्धति को लागू किए जाने को अनुचित मानते हैं। उनका मत था कि, "हम कपड़े पहनने के ढंग से लेकर सोचने की दिशा तक पश्चिम की नकल कर रहे हैं, जबकि हमारे पास हजारों वर्षों की सांस्कृतिक विरासत है।" (पाञ्चजन्य, 5 अक्टूबर, 1959)

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

भारतीय संस्कृति के विचार से संपूर्ण समाज एक रूप है। चिरंतन तत्व का अंग है और उसका संपूर्ण प्रभाव मानव जीवन पर एकसमान होता है। इसके अनुपालन से आत्मीयता बढ़ती है और एकात्मता की भावना का साक्षात्कार होता है। केवल राजनीतिक या आर्थिक व्यवहार के बलबूते यह अनुभूति असंभव ही है। ऐसे में व्यक्ति का स्वभावतरू समाज के अन्य घटकों के साथ ही स्नेहपूर्ण तथा एकात्मता का भाव उत्पन्न होना तय होता है। राष्ट्र से जुड़े किसी भी प्रश्न का समाधान इसी सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पाया जा सकता है। ऐसी व्यवस्था में प्रजा बिना किसी नियंत्रक के परस्पर एक दूसरे की रक्षा करती है। शुक्ल के विचार में राष्ट्रवाद का अर्थ केवल सीमाओं का सम्मान नहीं, सांस्कृतिक परंपराओं का संवर्धन भी है। शुक्ल सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सूक्ष्म संवेदों को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मूल आशय यही है कि भारत में जन्मा तथा भारत भूमि से पोषित प्रत्येक जन अपनी मातृभूमि पर, देश के पूर्वजों, देश के श्रेष्ठ मूल्यों, गौरवशाली इतिहास, श्रेष्ठतम परंपरा और समृद्ध विरासत पर गर्व करे।

शुक्ल एक समग्र राष्ट्र की संरचना का आधार इसी समृद्ध दाय अर्थात विरासत को मानते हैं। उनकी वैचारिकी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से परिचय कराती है। इस राष्ट्रवाद का संदर्भ सांस्कृतिक है, जो उस राष्ट्र की समस्त विविधताओं को सहेजकर और जोड़कर रखता है। संस्कृति अलगाव के स्थान पर एकात्म की अनुभूति जगाती है। ऐसे में भौगोलिक राष्ट्र जहां संकुचित एवं सांप्रदायिक है, वहीं सांस्कृतिक राष्ट्र संपूर्ण, समग्र तथा व्यापक होता है। सांस्कृतिक राष्ट्र की निर्मिति पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल कहते हैं, "राष्ट्र की एक सर्वमान परिभाषा है। केवल भूमि राष्ट्र नहीं होता, और न उस भूमि पर रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्ति समूह राष्ट्रीय होता है। भूमि अर्थात देश और संस्कृति के सहयोग से राष्ट्र का उदय होता है। राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है।" (शुक्ल, भानुप्रताप, 2008, पृष्ठ–26)

संस्कृति और हिंदुत्व

शुक्ल सर्वोच्च न्यायालय के 11 दिसंबर 1995 को हिंदुत्व के संदर्भ में दिए गए निर्णय का स्मरण कराते हुए कहते हैं कि भारतीय संस्कृति की आड़ में हिंदुत्व को निशाना बनाया जाना और उस पर सांप्रदायिकता का ठप्पा लगाना बंद होना चाहिए। तथाकथित आधुनिक विचारकों को कम से कम अब तो यह सार्वभौमिक सत्य स्वीकार कर ही लिया जाना चाहिए कि 'हिंदुत्व'

कोई रिलिजन न होकर, एक संस्कृति है, जीवनशैली है। वे आस्था और विश्वास जताते हुए कहते हैं कि संस्कृति कभी भी साम्प्रदायिकता नहीं फैला सकती है। शुक्ल बेबाकी से कहते हैं कि इस निर्णय के पीछे हमारे राष्ट्र की सांस्कृतिक दाय ही विद्यमान रही है। उसके अभाव में सर्वोच्च न्यायालय हिंदुत्व की सही और सर्वमान्य परिभाषा शायद ही कर पाता। शुक्ल आग्रह करते हैं कि हिंदुत्व को व्यापक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया जाना चाहिए। उनका मत है, "... इस सत्य को भलीभांति समझ लेना चाहिए कि हिन्दू मजहब नहीं, इस भरतभूमि का राष्ट्र है और हिंदुत्व उसकी राष्ट्रीयता। हिंदुओं के मन में किसी के प्रति न किसी प्रकार का दुराव है।..." (शुक्ल, भानुप्रताप, दैनिक जागरण, 18 दिसंबर, 1995)

संस्कृति की वत्सलता

शुक्ल भारतीय जीवन संरचना के तीन प्रमुख आधार तत्वों संस्कृति, संत और नारी को हजारों वर्षों से पीछे धकेले जाने के अंतहीन प्रयासों की अवधारणा के पीछे के कारकों का विश्लेषण करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि इन तीनों की छवि जितना धूमिल की जाती है, भारत उतना ही पीछे हटता जाता है। उसकी छवि उतनी ही अधिक विकृत होती जाती है। उसकी राष्ट्रीय प्रज्ञा उतनी ही कुंठित और लोक जीवन की संवेदनाएं शून्य होती जाती हैं। अपनी मांगलिक भावनाओं को मां का रूप भारतीयों ने बहुत समझ कर दिया है। इस संबंध से सभी सगे हो जाते हैं। हमारी संस्कृति का मातृभाव ही हमारी अमरता का कारण है। ऋषियों का संदेश यही है कि मातृभाव जीवमात्र के लिए 'वत्सल' होता है। शुक्ल इससे सहमति जताते हुए मानते हैं कि मातृभूमि की अवधारणा पितृभूमि के अधिकार की मांग पर टिकी नहीं होती है। जिन लोगों ने पितृभूमि की बात को आगे बढ़ाया, वे भारतीय स्वभाव को भूल गए हैं। शुक्ल के अनुसार, "... संस्कृति के मूल उद्भव की बात हमारे लिए उतना अर्थ नहीं रखती, जितनी यह बात कि संस्कृति कितनी वत्सल है, यह कितनी पुरानी होती हुई भी अपने निश्चल प्यार के कारण कितनी नयी है। अपनी मां कभी बूढ़ी नहीं होती, क्योंकि वह है तो हम बच्चे हैं, हममें विकास की संभावना है, वह है तो हम उसकी उपस्थिति में सृजनशील हैं, इसलिए मां हमारी जमीन है। संस्कृति भी हमारी जमीन है।" (शुक्ल, भानुप्रताप, दैनिक जागरण, 23 अक्टूबर, 1995)

सांस्कृतिक और विभ्रम

शुक्ल भारतीय संविधान के निर्माण काल में भी भारत का नाम 'इंडिया' रखे जाने को अनंत काल की दास मानसिकता का परिणाम मानते हैं और पाश्चात्य सांस्कृतिक आक्रमण के समक्ष नतमस्तक हो जाने की संज्ञा देते हैं। अंग्रेजियत के सम्मोहन में हम अपना कर्तव्य और धर्म ही भुला बैठे। वे अनुभव करते हैं कि भारत विरोधी अंग्रेजियत प्रधान संस्कृति के 1830 में हुए आक्रमण का जितना प्रबल प्रतिरोध होना चाहिए था, उतना किया नहीं गया। उनकी दृष्टि में संविधान निर्माताओं ने स्वाधीन भारत की यात्रा को प्राचीन काल से चली आ रही सांस्कृतिक प्रवाह का अंग तो माना गया किंतु स्वयं को भारतीय मस्तिष्क में रोपे तो बौद्धिक धरातल के दृष्टि विभ्रम से मुक्त नहीं कर पाए ।

राष्ट्रीयता और पंथनिरपेक्षता की अवधारणा को संवैधानिक अधिष्ठान मानने के क्रम में यदि संविधान निर्माता उसके मूल में गए होते तो निश्चित रूप से समृद्ध भारतीय सनातन सांस्कृतिक विरासत को ही पाते। वे अनजाने ही पाश्चात्य अवधारणाओं तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा उत्पन्न शब्दों की अर्थ विकृति से चिपके रहे। शुक्ल के अनुसार, "...पश्चिम द्वारा सृजित 'नवजात' राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता के भंवरजाल में भारत को ऐसा फंसाया गया और उसके आधुनिकतावादी नेतागण उसमें फंसे भी ऐसे के उन्हें अपना पराया और पराया अपना लगने लगा। हमरे देश के बुद्धिजीवी और पत्रकार अपने प्रति हीन भावना और अपराध–बोध से इतने अधिक चिंतित थे कि उन्होंने विदेशी मुहावरे खोज–खोजकर हमारे ऊपर थोपे और भारत की धरती पर जन्मे लोकजीवन के मुहावरों और लोक संस्कृति को अंधयुग का उत्पाद कहकर दुत्कारा...।" (शुक्ल, भानुप्रताप, 1995) शुक्ल आहत मन से स्वीकार करते हैं कि भारतीयों को जिस चिंतन, विचार और परित्याग की महानतम परंपरा का उत्तराधिकारी होना था, वे उसी को अतीत मानकर तथा वर्तमान में उसके स्वरूप को विकृत और प्रतिगामी अनुभव करने लगे हैं। पाश्चात्य सांस्कृतिक कुटिलता के जाल में फँसने से राष्ट्र का वर्तमान तो बिगड़ा ही भविष्य भी वर्तमान बनने से पहले ही चौपट हो गया।

सरकार द्वारा विकृत मान्यताओं को प्रोत्साहन

वर्तमान परिवेश में आधुनिक मनोवृत्ति में लोग शीघ्र फल एवं सफलता का आसान उपाय चाहते हैं। न्यूनतम उद्योग में अधिकतम लाभ की चाह के मानव दौर्बल्य ने राष्ट्र जीवन के समस्त क्षेत्रों को निगल लिया है। शुक्ल अनुभव करते हैं कि आजादी के बाद के वर्षों में भारतीय संस्कृति को ऐसे प्रस्तुत किया गया है मानो उसका देश के सामान्य जीवन, यथार्थ तथा आधारभूमि से कोई संबंध ही न रहा हो। लोगों को लगने लगा है कि संस्कृति केवल मंच पर प्रदर्शित करने का उपक्रम मात्र है। इसके परिणाम स्वरूप आज भारतीय जन मानस भालूनाच और नटों के करतब को ही अपनी संस्कृति मान बैठे हैं।

शुक्ल स्पष्टता से उद्घोषित करते हैं कि समाज और संस्कृति स्वायत्त होते हैं और अपनी रक्षा करने में स्वयं सक्षम होते हैं। उनके विचार में एक आदर्श स्थिति में समाज और संस्कृति को सरकार से स्वतंत्र होना चाहिए, किंतु यथार्थ के धरातल पर ऐसा हो नहीं पाता। वे सरकार पर संस्कृति में हस्तक्षेप के साथ ही विकृतियों के प्रोत्साहन का आरोप लगाते हुए कहते हैं, "...सरकार द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियां सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की दुर्दशा के लिए काफी हद तक उत्तरदायी हैं। 'राजा कालस्य कारणं' आज लोकतंत्र के युग में भी उतना ही सही है, जितना पहले राजतंत्र के युग में था। अगर समाज और संस्कृति में सरकार की आर्थिक नीतियां विकृत मान्यताओं को प्रोत्साहन देती रहें तो वे अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे।" (पाञ्चजन्य, 23 जून, 1985) स्पष्ट है कि भारतीय जनों में पनपते संस्कृति विषयक हीनता बोध का प्रधान कारण सरकार द्वारा आँख मूँद लेना भी है। पर्याप्त दिशा–निर्देश के अभाव में जिन रीति–नीतियों को संस्कृति का संपोषक होना चाहिए था, वे उसके प्रसार में सबसे बड़ी अवरोधक बन बैठी हैं।

संस्कृति का अवमूल्यन और समाज

शुक्ल संस्कृति के अवमूल्यन में पाश्चात्य जीवनशैली, अश्लीलता के अंधानुकरण के साथ ही प्रचार माध्यमों द्वारा मनोरंजन के नाम पर ऐसे पक्षों को उभरे जाने को प्रधान कारण मानते हैं। उनके विचार से समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में भोंडे विज्ञापनों से निम्नस्तरीय उपभोक्तावाद को बेतहाशा उभारा जाता है। उनकी मान्यता है कि यदि दूरदर्शन पर तेजी से फैलते स्वेच्छाचार को समय रहते नियंत्रित नहीं किया गया तो समूची भावी पीढ़ी पश्चिम के मोहपाश में जकड़ कर नष्ट हो जाएगी। शुक्ल चेताते हैं कि, "...हमारे देश में ऋषियों और तपस्वियों की तपस्या एवं साधना को खंडित करने का प्रयास करने वाली 'मेनकाओं' को लोक मान्यता कभी नहीं मिली...।" (शुक्ल, भानुप्रताप, दैनिक जागरण, 26, दिसंबर,1994)

शुक्ल आश्चर्य प्रकट करते हैं कि जिस देश में संकट के क्षणों में हमेशा शक्ति स्वरूपा नारी ने विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होकर राष्ट्र, धर्म, संस्कृति और परंपराओं की रक्षा की हो, जो

राजनीतिक मंत्रणा से लेकर युद्ध भूमि में कौशल दिखाती हो, जो समाज के चारित्रिक आधार का पथ प्रशस्त करती हो, जिसे मानव जाति की जननी के रूप में सदैव उच्च स्थान मिला हो, जिसे हमेशा पूज्य माना गया हो, जो समूचे विश्व को दिशा दिखाने में सक्षम हो, आज वही भारतीय नारी पछुआ हवा के प्रभाव में स्वयं दिशाहीन होकर भटकने लगी है। शुक्ल नारी देह को विज्ञापन और प्रदर्शन की वस्तु बनाए जाने की स्वच्छंदता का निर्लज्जता पूर्वक समर्थन किए जाने पर महिलाओं को भी आड़े हाथ लेते हैं। समाजशास्त्रीय चिंतक के रूप में वे अपनी चिंता को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि, "महिलाओं को उपभोग संसाधन मानने की अभारतीय मनोवृत्ति का शिकंजा कसता जा रहा है। कला, संस्कृति, नृत्य, गायन आदि श्रेष्ठ मानव निर्माण कार्य गुणों की प्रेरणा का तेजी से ह्रास हो रहा है। भारतीय संस्कृति पर यह भयंकर आक्रमण है। इसका प्रतिरोध परिवार, समाज, सरकार तथा जन कल्याणकारी स्वयंसेवी संस्थाओं आदि सभी मोर्चों पर होना नितांत जरूरी है।" (शुक्ल, भानुप्रताप, दैनिक जागरण, 16 मई, 1994)

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से भारतीय संस्कृति के समर्थकों को नवीन ऊर्जा और बल मिलने की संभावनाएं विकसित होती हैं। इससे स्पष्ट पता चलता है कि आज चतुर्दिक पांव पसार चुकी अनैतिकता का निवारण अपनी पारंपरिक संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा से ही संभव है। साथ ही पारंपरिक संस्कृति पर कुठाराघात करने की दुष्प्रवृत्ति पर भी कुछ न कुछ नियंत्रण संभव हो सकेगा। देश के समक्ष मौजूदा आधारभूत चुनौती यह है कि पृथ्वी के स्वास्थ्य और जलवायु को इतना स्वस्थ कैसे बनाया जाए कि जिसमें संविधान के मूल आदर्शों और मूल्यों के बीज जनमानस में प्रमाणिक आस्था के साथ पुष्पित व पल्लवित हो उठें। वर्तमान परिवेश में विद्यमान अनेक समस्याओं का संपूर्ण समाधान केवल भारत के सांस्कृतिक दाय अर्थात विरासत को परिभाषित तथा संरक्षित करके ही पाया जा सकता है। आज आवश्यक है कि विगत शताब्दियों की जमी धूल को झाड़–पोंछकर अपनी संस्कृति और धर्म का उज्ज्वल निर्मल स्वरूप विश्व के सम्मुख लाया जाए।

सन्दर्भ

1. शुक्ल, भानुप्रताप (1959, 5 अक्टूबर). आलेख : पश्चिम की छाया, पाञ्चजन्य.
2. शुक्ल, भानुप्रताप (2008). भानुप्रताप समग्र, खंड–2. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन. पृष्ठ–26.
3. शुक्ल, भानुप्रताप (1995, 18 दिसंबर). आलेख : भारतीयता का प्राणतत्त्व–हिंदुत्व, दैनिक जागरण.
4. शुक्ल, भानुप्रताप, (1995, 23 अक्टूबर). आलेख : संतान भाव, दैनिक जागरण.
5. शुक्ल, भानुप्रताप (1995, 18 दिसंबर). आलेख : भारतीयता का प्राणतत्त्व–हिंदुत्व, दैनिक जागरण.
6. शुक्ल, भानुप्रताप (1985, 23 जून). आलेख : इस गंगा का भी ख्याल कीजिये, पाञ्चजन्य.
7. शुक्ल, भानुप्रताप (1994, 26 दिसंबर). आलेख : मॉडलिंग, दैनिक जागरण.
8. शुक्ल, भानुप्रताप (1994, 16 मई). आलेख : जागृति, दैनिक जागरण.